जयपुर रियासत काल में मीणा जनजाति में सुधार के प्रयास

*डॉ. गिरधारी लाल मीणा

शोध सारांश

सवाई जयसिंह द्वितीय (1699–1743 ई.) ने अपने व्यस्त सैन्य अभियानों के कारण नगर और ग्रामों की सुरक्षा के लिये मीणा प्रमुखों को उत्तरदायी नियुक्त किया क्योंकि पूर्व में भी कछवाहा नरेशों को मीणों पर पूर्ण विश्वास थां, वे ही रालकोष व अन्तःपुर के रक्षक होते रहे थे। सवाई जयसिंह ने जयपुर शहर व ग्रामों की सुरक्षा का भार अपने शासनकाल में विश्वसनीय मीणों पर ही छोड़ दिया था। परन्तु एक शर्त जोड़ दी गई कि लूट, चोरी और डाका होने पर सम्बन्धित चौकी ईन्चार्ज को उसका पता नहीं लगाने पर उसकी भरपाई स्वंय के स्तर पर करनी पड़ेगी। यह शर्त ही आगे चलकर दादरसी प्रथा कहलाई।

सवाई जयसिंह ने 27 चौकियां स्थापित की इनमें से 7 की तालिका निम्न प्रकार है। इन चौकियों में ईन्चार्ज मीणा ही होते थे।

1. चौकी रामगज आसामी 23, जमादार एक, वेतन 15 रूपये प्रति मास। (आसामियों का वेतन 4 रूपये प्रति माह)
2. चौकी चौड़ा रास्ता आसामी 20 जमादार एक, वेतन 10 रूपये प्रति माह।
3. चौकी ब्रह्मपुरी आसामी 23 जमादार एक, वेतन 12.5 प्रति मास।
4. चौकी माणक चौक 14 एक आसामी 13 रूपये प्रति माह आसामी 22 (4 रूपये प्रति मास)
5. चौकी दरीबा–पान आसामी 10, जमादार एक, 7 रूपये आसामी 10 (4 रूपये प्रति माह)
6. गंगापोल आसामी 12 जमादार एक 10 रूपये प्रति मास। आसामी 10 (4 रूपये प्रति मास)
7. चौकी हीदा की मोरी आसामी 12 जमादार एक 10 रूपये प्रति मास आसामी 11 (4 रूपये प्रति मास)

मीणों पर कछवाहा नरेशों को विश्वास था, अतः उन्होंने नगर व ग्रामों की सुरक्षा का भार अपने विश्वासपात्र मीणा सरदारों पर छोड़ दिया। सवाई जयसिंह द्वितीय ने प्रत्येक गांव में एक चौकीदार या ईन्चार्ज नियुक्त किया था और ये सभी मीणा ही होते थे। क्योंकि मध्यकाल में और उसके बार भी पुलिस की कोई व्यवस्था नहीं थी और यह कार्य भी सेना को ही करना पड़ता था। अतः ग्राम व नगरों की सुरक्षा का प्रश्न सरकार के लिये चुनौती था। सवाई जयसिंह ने अपने व्यस्त सैन्य अभियानों के कारण प्रशासन के सहयोग हेतु योग्य मीणों को चौकीदार नियुक्त किया। जो वस्तुतः पुलिस का कार्य करते थे। इसका प्रमुख कार्य गांवों को चोरी के भय से मुक्त रखना था। प्रारम्भ में

चौकीदार राजकीय सेवक नहीं होते थे। गांव वाले चौकीदार को अपनी फसल का कुछ भाग उसके मेहनताने के रूप में दे दिया करते थे। यदि ग्रामीण या काफिले में चोरी हो जाती और चौकीदार द्वारा उसका पता न लगा पाने पर उसकी भरपाई अपने पास से करनी पड़ती थी। चोरी की भरपाई करना ही दादरसी प्रथा थी।

कुछ गावों में रियासत द्वारा पटेल व भौमिका भी नियुक्त किये जाते थे। कुछ गांवों में ऐसा रिवाज भी था कि वहां का महाजन चौकीदार को मेहनताना के रूप मे कुछ दे दिया करता था। "1853 ई. मे मालपुरा के नाजिम ने जयपुर रिपोर्ट भेजी कि महाजनों ने चौकीदारों को मेहनताना देना बन्द कर दिया है। अतः तत्काल चौकीदारों की व्यवस्था की जाये। इस फौजदार ने चौकीदारों से चोरी की भरपाई की गारन्टी दी।" (फाईल नम्बर जे–2–0141852–724 के. डी. ए. जे.–केफियत फ्रॉम नाजिम भालपुरा टू फौजदार दिनांक 06.05.1852)

यह हिदायत 1886 ई. में माधोसिंह द्वितीय के शासन में विधिवत कानून बनी। इसे Laws prescribed for Criminal Courts के शीर्षक के तहत जारी किया गया। इसकी एक धारा के अनुसार यह निर्धारित किया गया कि चोरी के मामलों में चाराई गई वस्तु का मुल्य परम्परानुसार सम्बन्धित चौकिदार या ईन्चार्ज से ही वसूल किया जावे। किमिनल हिदायत नम्बर–188 दिनांक 17–05–1888 के अनुसार रात्रि के समय ड्यूटी और गस्त पर जाने वाले चौकीदार अपने साथ खतनाक हथियार रख सकते थे। एक सौ रूपये तक की चोरी के अभियेगों में फैसला देने का अधिकार नाजिम को दे दिया गया। साथ में वह उस चौकीदार से सौ रूपये वसूल भी कर सकता था।

1905 ई. में जयपुर रियासत में 333 चौकीदार नियुक्त किये गये। दो चौकीदार एक साथ गस्त लगाते और दूसरे मार्गों के चौकीदारों से सम्पर्क में रहते थे। पहले इनके लिये यह प्रवाधान था कि या वे वेतन लें या किसानों से फसल का निर्धारित भाग। शहर के चौकीदारों को वेतन रियासत द्वारा ही दीया जाता था परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण ही मेहनताना देते थे।

1922 ई. के बाद दादरसी वसूली का क्षेत्र गांव ही रह गये। इस संदर्भ में जयपुर की चीफ कोर्ट की विशेष बैंच ने लोहरवाड़ा बनाम सीताराम के मामले में इस आशय को स्पष्ट किया कि चौकीदार अपने मेहनताने के रूप में ग्रामीणों से उनकी कृषि पैदावार का एक निश्चित भाग (हक–पल्ला) ले सकता है। यह गावों में प्रतिवर्ष दिया जाता था जबकि नगरों में चौकीदार को यह हक–पल्ला (Haq-Palla) वेतन के रूप मं प्रति मास मिलता था। नगर के चौकीदारों को भी चोरी की रकम भरनी पड़ती था। जबकि उसे नगर में कोई हक–पल्ला नहीं मिलता था।

1937 में हथरोई स्थित चोरी हो गई और भुगतान उसके चौकीदार को करने के आदेश दिए गये। इस संदर्भ में जयपुर चीफ कोर्ट की पुरी बैंच ने फैसला दिया कि चर्च की दादरसी की वसूली चौकीदार से की जाये, पर चीफ कोर्ट बैंच ने निर्णय दिया कि चर्च के चौकीदार को कोई हक–पल्ला नहीं मिलता। अतः दादरसी रकम उससे वसूल न की जावे। स्टेट कौन्सिल के वाइस प्रेसिडेन्ट के अनुरोध पर यह मामला पुनः चीफ कोर्ट की फुल बैंच के सामने पेश हुआ और निर्णय दिया गया कि चर्च के चौकीदार को हक–पल्ला नही मिलता तो उसके बदले वेतन तो मिलता है। अतः उससे दादरसी की रकम वसूल की जावे।

चौकीदार का दादरसी की रकम देने का उत्तरदायित्व तभी होता था जबकि वह या तो हक–पल्ला पावे या मासिक वेतन पावे और वह चोरों का पता लगाने में असफल रहे तो चोरों को सजा मिली या नहीं यह देखना चौकीदार का काम नहीं होता था। चोरी का सूत्र हाथ लगते ही चौकीदार का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। यह दादरसी व्यवस्था सारी जयपुर रियासत (Jaipur State) में लागू थी तब भी प्रत्येक ठिकानेदार अपने ठिकाने में इसे लागू करने का बाध्य नहीं था। एक ठिकाने में चोरी हुई और चोर का पता नहीं लगा। इस पर जिसके चोरी हुई उसने ठिकानेदार पर दादरसी देने का क्लेम किया। नाजिम ने उसे उचित ठहराया अपील कोर्ट ने इस निर्णय का समर्थन

किय चीफ कोर्ट ने इन निणयों को बदल दिया और निर्णय दिया कि ठिकानेदार को चोरी की भरपाई के लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

इससे स्पष्ट है कि ठिकानेदारों को दादरसी से मुक्त रख गया, जबकि सामान्य चौकीदारों को दादरसी का भुगतान करने का उत्तरदायी ठहराया। सम्भवतः रियासत के प्रमुखों और ठिकानेदारों में शक्ति संतुलन के लिये ठिकानेदारों को दादरसी से मुक्त रखा गया।

1946 मे Government Notification No. -4724, 18–05–1946 के अनुसार दादरसी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। इसी साल से इसे प्रभावी माना गया। इसके अनुसार चौकीदार अब ग्रामीण से हल–पल्ला व परोसा (कांसा) की मांग कानूनन नहीं कर सकता था।

दादरसी प्रथा से यह स्पष्ट होता है कि जयपुर रियसत में राजाओं की दृष्टि में मीणों की छवि अच्छी थी। वे प्रशासन में विश्वसनीय माने जाते थे। नाहरगढ़ व जसपुर में राजकीय कोष के रक्षक मीणा ही रहे। यहां तक कि मानसिंह द्वितीय अपनी रानी गायत्री देवी के साथ जयगढ़ में जाते तो मीणा चौकीदार उनकी आते ओर जाते तलाशी लेते। जो माल वे वहां से लाते उसको रजिस्टर में दर्ज करवाते थे। 18वीं सदी में अंग्रजों के शक्तिशाली होने और रियासत में उनका हस्तक्षेप बढ़ने के समय दादरसी प्रथा के द्वारा ही मीणों की रियासत में महत्वपूर्ण भूमिका बनी रही।

दादरसी प्रथा कोई राजकीय कानून नहीं थी वरन् यह कछवाहा नरेशों और मीणा प्रमुखों के मध्य सहसामंजस्य व आपसी समझौते का परिणाम थी। यह कछवाहों और मीणों के आपसी विश्वास का परिणाम थी। जो समय के बदलाव के साथ ठिकानेदारों और जागीरदारों के अहम के कारण बाद में चलकर कई बुराईयों का कारण भी बनी। यह उल्लेखनीय है कि यह प्रथा पूर्वी राजस्थान में मात्र जयपुर रियासत में ही अस्तित्व में थी।

राजस्थान पत्रिका के 19–03–2013 के अंक हेरिटेज विंडो कालम में जितेन्द्र सिंह शेखावत ने "कारगर थी जयपुर स्टेट की चौकीदारी" शीर्षक लेख में जयपुर राज्य और मीणों के सम्बन्ध को इस प्रकार बताया है– "जयपुर स्टेट के गांवो और शहरों में प्रजा और सरकारी धन की सुरक्षा के लिये कायम की गई चौकीदारी व्यवस्था बहुत कारगर थी। बड़ी चौपड़ पर तख्तों पर खुले में सोने–चांदी का कारोबार करने वाले रात को कीमती सामान बक्से या संदूकों में रखकर घर जाते थे। इस बहुमूल्य सामान की निगरानी बहादुर व कर्त्तव्यनिष्ट चौकीदार करते थे। मीणा सरदारों को अति विश्वश्सनीय मानते हुए उन्हें सुरक्षा का माम सोंपा गया था। वे अपनी ताकत के बल पर सम्पत्ति व प्रजा की सुरक्षा करते थे। समाजसेवी सियाशरण लश्करी के पास मौजूद रिपोर्ट के अनुसार चौकी प्रभारी मीणा सरदारों को 6 हजार 898 बीघा भूमि दी गई थी। सिटी पैलेस, नाहरगढ़ या जयगढ़ में रखे गुप्त खजाने की सुरक्षा का भार बारह गांव के मीणा सरदारों के जिम्मे था। वर्ष 1924 में बाहर गांव के मीणों का विभाजन किजे जात बक्षीखाना में मिला दिया गया। हीदा मीणा की बहादुरी से खुश हो सवाई जससिंह ने परकोटे की एक मोरी का नाम हिदा की मोरी रखा। 12 जुलाई 1935 में हथरोई के ऑल सेंट चर्च से गायब सामान का पुलिस पता नहीं लगा सकी तब चर्च न चौकीदार श्रीकिशन से क्षतिपूर्ति राशि 165 रूपये मांगे। चौकीदार ने तर्क दिया कि चर्च वाले उसे सुरक्षा के बदले में हकपाला (वेतन) नहीं देते है। मामला चीफ कोर्ट तक पहुंचा। मुख्य न्यायाधीश शीतला प्रसाद वाजपेयी और संग्राम सिंह सामोद की बैंच ने फैसला दिया कि चौकीदार को हकपाला नहीं मिलता हो लेकिन सुरक्षा के बादले जमीन मिली होने से चौकीदार को क्षतिपूर्ति राशि देनी होगी। वर्ष 1940 में चौकीदारी व्यवस्था में पुनर्गठन करने पर पता चला कि जयपुर जैसी चौकीदारी व्यवस्था किसी स्टेट में नहीं है। इतिहासकार रावत सारस्वत ने मीणां इतिहास में लिखा कि रियासत के ईमानदार व वफादार मीणा धन व जनता के असली रक्षक थे।"

"अपराधी जाति अधिनियम 1871" ब्रिटिश सरकार ने बनाया। इस कानून को अंग्रेजों तथा उनके अधीनस्थ देशी राज्यों ने समय–समय पर सख्त से सख्त बनाते रहे। सन् 1887, 1897, 1911 तथा 1923 में इसके संशेधन किये गये। सन् 1923 का संशोधित स्वरूप 1924 मे उन सभी राज्यों में लागू हुआ जिनमं तथाकथित अपराधी जातियां पाई जाती थी। कंजर, नायक, बंजारा, नट और मीणा जाति का नाम इस सूची मे उल्लेखनीय है। सन् 1950 की गणना के अनुसार इस सूची में बावरियों की 31,767 संख्या के बाद मीणुं की 20,252 संख्या ही दूसरे स्थान पर थी। उक्त अधिनियम की कठोरता का आभास उन प्रावधानों से हो सकेगा। जिनमें इस तथा कथिक अपराधियों का सुख चैन से रहना तो दूर पेट भरना तक दुभर हो गया था। इस कानून के अधीन अपरधी घोषित जाति के सभी व्यक्तियों का पंजीकरण अनिवार्य था। उनकी पहचान व अंगुलियों की छापें पुलिस द्वारा ली जाती। उन्हे निश्चित स्थानों पर ही रहना होता था। निर्धारित समयों पर उपस्थिति दर्ज करानी होती बाहर जाने के लिये अनुज्ञा–पत्र लेना होता तथा जहां जोते वहां के पंच तथा अन्य निर्दिष्ट अधिकारी द्वारा आने जाने के समय आदि का विवरण अंकित करवाना होता। इन बातों का उल्लंघन करने पर एक से तीन वर्ष तक की सजा और 500 रूपये जुर्माना देना होता। पुलिस के उच्च अधिकारी बिना किसी कारण के भी किसी को तीन से छः माह तक की सजा दे देते थे जिसकी कोई अपील नहीं थी।

***व्याख्यता**
इतिहास विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : बीकानेर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग 5, खण्ड 1), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1980.
2. राय, निर्मलचन्द्र : महाराजा जसवंत सिंह का जीवन व समय, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1981.
3. राठौड़, किशन सिंह बैर : उदावत राठौड़–इतिहास, ठा.किशन सिंह प्रकाशन, बैर, 1977,
4. रावत, सारस्वत : मीणा इतिहास, राजस्थान खादी ग्रामोद्योग, जयपुर, 1972.
5. रत्नावत, डॉ. श्यामसिंह : औरंगजेब तथा उत्तर मुगलकालीन दस्तावेज, साहित्यागार, जयपुर, 2004.
6. रेऊ, विश्वेश्वरनाथ : भारत के प्राचीन राजवंश (भाग 3), तृतीय संस्करण, आविष्कार प्रकाशन, जयपुर, 1983.
7. रेऊ, विश्वेश्वरनाथ : मारवाड़ का इतिहास (भाग 2), द्वितीय संस्करण, आविष्कार प्रकाशन, जयपुर, 1984.